(अष्टपाहुड-दर्शनपाहुड गाथा ११ का भावार्थ) समझ में आया? नग्नमुद्रा थी, अट्ठाईस मूलगुण थे - इत्यादि। ऐसा ही मार्ग जैनदर्शन का अनादि का है। उसमें मोरपिच्छी आदि होते हैं। शौच का उपकरण कमण्डल होता है। पात्र-वात्र नहीं होते, ऐसा कहते हैं। **ऐसा बाह्य भेष है**... जैनदर्शन में ऐसा तो बाह्य वेश अनादि का परमात्मा का कहा हुआ मार्ग (था)।

तथा अन्तरंग में जीवादिक षट्द्रव्य,... कहो, मूलचन्दजी! इसमें वैष्णव और जैन में किस प्रकार इकट्ठा (करना)? ...कुन्दकुन्दाचार्य। अपना मार्ग अलग करने के लिये ऐसा लिखा होगा? यह तो मार्ग ऐसा है। तीर्थंकरों ने धारण किया है। आहाहा! कायर का कलेजा काँप उठे कि अर..र..! यह सब वेश है न? यह सब वेश वीतराग के मार्ग से बाह्य है। वस्तु ऐसी है, बापू! यह व्यक्ति के प्रति द्वेष की बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? कहो, बल्लभभाई! जितने वस्त्र आदि के वेश हैं, वह जैनदर्शन का वेश ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। वह तो कुलिंग है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। जैन

में ऐसे हैं, उन्हें भी जैन गिनते नहीं तो दूसरे मत में जैन के साथ कुछ भी मेल खाये, ऐसी बात जरा भी है नहीं। वस्तुस्थिति है, उसमें क्या बने?

जैनदर्शन अन्तरस्वरूप, वस्तु का स्वरूप अखण्ड आनन्द आदि अनन्त गुणों का पिण्ड, उसकी श्रद्धा, षट्द्रव्य की श्रद्धा, पंचास्तिकाय की श्रद्धा। है न? सात तत्त्व की श्रद्धा, नौ पदार्थ की (श्रद्धा) **यथोक्त जानकर...** जैसे हैं, यथा-उक्त। जैसे भगवान ने-परमेश्वर ने कहे, वैसे यथा-उक्त जानकर। **श्रद्धान करना...** यह तो अभी बाह्य आया। अब **भेदविज्ञान द्वारा अपने आत्मस्वरूप का चिंतवन करना, अनुभव करना...** आहाहा! समझ में आया? और यह विकल्प जो है, अट्ठाईस मूलगुण आदि या षट्द्रव्य की श्रद्धा, सात तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प, ऐसा होता है, कहते हैं परन्तु उससे भिन्न करके आत्मा का अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। वह जैनदर्शन का मूल है। समझ में आया? अब इसमें दूसरे के साथ मेल नहीं खाता। दूसरे ऐसा कहते हैं। उसमें क्या हो? कहो। या तो कहे अपना पक्ष खींचते हैं। पक्ष (नहीं)। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, उसमें पक्ष की बात ही कहाँ हैं? तीर्थंकरों ने यह मार्ग ग्रहण किया है, वही मार्ग जैनशासन में अनादि से चला आता है, परम्परा से चला आता है। क्या हो? उसे छोड़ डाले तो सत्य कहीं अन्य हो जायेगा?

भेदविज्ञान द्वारा अपने आत्मस्वरूप का चिंतवन करना, अनुभव करना... ऐसी श्रद्धा, ऐसा वेश सब होता अवश्य है, तथापि उससे भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करना, वह वास्तविक निश्चयस्वरूप है। वह वस्तु है परन्तु उसका व्यवहार ऐसा होता है। समझ में आया? छह द्रव्य की श्रद्धा, नवतत्त्व की, सात तत्त्व की, पंचास्तिकाय की (श्रद्धा होती है), वेष नग्नपना, पंच महाव्रत के विकल्प आदि हों। होवे तो वे बाह्य में होते हैं। बाह्य, वह सब बाह्य है। बाह्य दूसरे प्रकार का हो और अन्तर में ऐसा हो - यह नहीं बन सकता, ऐसा कहते हैं। बाह्य में दूसरा हो, वस्त्र-पात्र रखते हों और अन्दर में अनुभव, सम्यग्दर्शन हो, ऐसा नहीं हो सकता, यह कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा जिनदर्शन... लो! **ऐसा दर्शन अर्थात् मत वह मूलसंघ का है।** अनादि मूलसंघ जो जैनदर्शन का यह मत है, यह दर्शन है। लो! यहाँ मत लिया न। पहले कहा था न? 'दंसणमग्गं' वहाँ भी लिया था न? 'दंसणमग्गं' में मत और धर्म लिया। यह धर्म है

और मत है, ऐसा ही लिया था। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा दर्शन...** आभ्यन्तर और बाह्य। ऐसी जो चीज़, ऐसा जो दर्शन मत, वह मूलसंघ का है। अनादि जैनदर्शन का मूलसंघ यह है। **ऐसा जिनदर्शन है, वह मोक्षमार्ग का मूल है;...** यह जैनदर्शन है, वह मोक्षमार्ग का मूल है, मोक्षमार्ग यह है। समझ में आया? **इस मूल से मोक्षमार्ग की सर्व प्रवृत्ति सफल होती है...** ऐसा निश्चय भेदज्ञान का अनुभव और विकल्प आदि है, उसकी स्थिति, षट्द्रव्य की श्रद्धा, नग्नमुद्रा—ऐसी स्थिति जहाँ हो, वहाँ उसकी सब प्रवृत्ति सफल है। व्यवहार व्यवहाररूप से और निश्चय निश्चयरूप से। समझ में आया? अब भाई! अष्टपाहुड तो आठ वर्ष पहले वाँचन किया गया था। अब पैंतीस वर्ष हुए, छत्तीसवाँ वर्ष चलता है। सब स्पष्ट तो होना चाहिए न! स्पष्ट होना चाहिए न? स्पष्ट यह है। आठ वर्ष पहले यह वांचन हो गया है।

तथा जो इससे भ्रष्ट हुए हैं,... ऐसे मार्ग से जो कोई हट गये हैं, भ्रष्ट हुए हैं, **वे इस पंचमकाल के दोष से जैनाभास हुए हैं,...** यह काल का दोष है। आहाहा! ऐसा वीतराग मार्ग, उसमें यह काल ऐसा है कि भ्रष्ट हुए, ऐसा (कहते हैं)। मूल तो काल भ्रष्ट हुए, वह स्वयं के कारण से। ऐसे काल में ऐसा हुआ, ऐसा कहते हैं। नहीं तो वीतरागमार्ग अनादि का इन्द्रों ने स्वीकार किया, गणधरों ने पालन किया, तीर्थंकरों ने ग्रहण किया, उन्होंने प्ररूपित किया, ऐसा अनादि वीतरागमार्ग, उसमें से यह काल ऐसा हलका, इसीलिए उसमें से जीव भ्रष्ट हुए। समझ में आया? **जैनाभास हुए हैं,...** देखो! जैन नहीं परन्तु जैन जैसा दिखाव। यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्ट कहा, वह यह बात है। अन्यमत में डाला है, यह बात है। यहाँ पण्डित जयचन्दजी ने स्पष्टीकरण किया है। मूल पाठ में यह आता है। समझ में आया? श्वेताम्बर, तपगच्छ और स्थानकवासी ये सब जैनाभास हैं। जैन नहीं। ऐ... रतिभाई! यह तुम सब पूरी जिन्दगी उसमें (रहे)। ये सेठ ऐसा है। पुस्तक है? पुस्तक नहीं होगी। पुस्तक नहीं? है। उसमें से पढ़ना। ग्यारहवीं गाथा। समझ में आया?

सम्प्रदाय के आग्रहवालों को तो ऐसा लगता है कि यह तो हमें जैनाभास कहते हैं। जैन नहीं कहते। ऐसा कहते हैं, परन्तु क्या हो? वस्तु तो ऐसी है, बापू! अनादि की वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। यह तो वस्तु के स्वरूप की मर्यादा है। मुनिपने की मर्यादा, जैनशासन की हद, मोक्षमार्ग की अभ्यन्तर और बाह्यदशा, विकल्प आदि बाह्य और

नग्नदशा बाह्य, ऐसा ही उसका अनादि का स्वरूप है। यह बात... भगवान तीर्थंकरों ने, केवलियों ने कहा है, महाविदेहक्षेत्र में भगवान भी इसी प्रकार से कहते आये हैं। इसमें पक्ष-वक्ष नहीं होगा ? लक्ष्मीचन्दभाई ! ये सब यह बैठे हैं। रामजीभाई ! ये स्थानकवासी थे। तुम मन्दिरमार्गी थे। रतिलाल स्थानकवासी थे, ये भी स्थानकवासी थे, सब जोबालिया। छबीलभाई स्थानकवासी थे। मार्ग यह है, कहते हैं। आहाहा ! यह किसी व्यक्ति के प्रति बात नहीं है, द्वेष की बात नहीं है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई ! ऐसे सत्य को स्वीकार नहीं करके दूसरा स्वीकार करेगा तो भ्रमणा में पड़कर भटकेगा। सत्य हाथ नहीं आयेगा।

पहले श्वेताम्बर को लिया। श्वेत-अम्बर। जिनके श्वेत वस्त्र हैं। पीले तो बाद में पीछे से हुए हैं उन लोगों में। उनमें अन्तर्भेद से यह स्थानकवासी ढूँढ़िया निकले। वे सब जैनाभास हैं, जैन नहीं; अजैन हैं। ऐ... मगनभाई ! यह सब उसमें जन्मे हुए। श्रद्धा वह है न, मार्ग तो यह है, भाई ! अब तो बहुत समय के बाद बहुत खुल्ला आने पर स्पष्ट आवे न ! क्यों, चिमनभाई ! यह क्या ? वढ़वाण में तो शोर मचाते थे। पहले-पहले आये न (संवत्) १९९९ में। कितने ही यह बोलते थे। तुम्हारे फोआभाई का डेला, उसमें से कितने ही बोलते थे। कितनों को भ्रष्ट किया ! ऐसा बोलते थे। १९९९ में पहले गये न, कितने ही कहते थे। कुछ कहता था। अपने को नाम (खबर नहीं होती)। आवाज आयी थी। लोग ऐसा कहते हैं, गाँव में आकर कितनों को भ्रष्ट किया। अरे... भगवान ! मार्ग तो यह है, बापू ! भाई ! उसे जँचा हो उस प्रकार से, दूसरा नहीं होता ? जिन्दगी में सुना न हो कि यह क्या है ? जाधवजीभाई ! तुम्हारी महिलाएँ वहाँ ढूंढिया में प्रमुख थी। सेठ लोग सामने होवे न, इसलिए महिलाएँ भी फिर सामने पड़ती हैं। यह तो यहाँ आने पर मुश्किल-मुश्किल से आये। ...नहीं तो मैं चला जाऊँगा। तुम्हारा कहता था। यह सब... क्या कहलाता है ? दिलीप... दिलीप। दादी ऐसा कहती थीं। आने के बाद तो ऐसा हो गया कि ओह ! यह तो मार्ग दूसरा लगता है।

श्वेताम्बर, उसमें मूर्तिपूजक और ढूंढिया दोनों आये। श्वेताम्बर निकले उन्होंने तो वस्त्र, पात्र आदि वेश बदला और इन्होंने तो फिर मूर्ति को उड़ाया। अनादि की मूर्ति जैनदर्शन में थी, समझ में आया ? ....है या नहीं ? मार्ग यह है। ऐ... नागरभाई !

मुमुक्षु : इसीलिए तो सबने स्वीकार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अब स्पष्ट होता है कि इसमें कुछ फेरफार दूसरा हो, वह जैनमार्ग नहीं है। नागरभाई! बराबर है? यह चिमनभाई ये... ये मन्दिरमार्गी थे। ऐई! मार्ग अलग! प्रभु का मार्ग निश्चय और व्यवहार तथा वेश तीनों अलग प्रकार हैं, ऐसा कहते हैं। निश्चय में तीन दर्शन, ज्ञान और चारित्र की परिणति। व्यवहार में अट्ठाईस मूलगुण आदि के विकल्प वेश दिगम्बर मुद्रा। ऐसा मार्ग अनादि का वीतराग का था। अनादि का यह मार्ग है।

श्वेताम्बर, द्राविड़,... उसमें कोई पन्थ होगा। **यापनीय,...** यापनीय संघ दिगम्बर में से निकला हुआ यापनीय संघ है। नग्न रहते थे, स्त्री को मोक्ष मानते थे। श्वेताम्बर के शास्त्र को मानते थे। यापनीय संघ, परन्तु वापस नग्न रहते थे। स्त्री को मुक्ति मानते थे, भगवान को रोग, यह सब मानते थे। श्वेताम्बर के शास्त्र मानते हैं। वे सब भ्रष्ट होकर निकले हुए हैं। **गोपुच्छ–पिच्छ,...** कोई गाय की पूँछ रखते होंगे, मोरपिच्छी छोड़कर। **निःपिच्छ...** पिच्छी बिना कोई साधु निकले। भगवान के मार्ग में अनादि की मोरपिच्छी थी। समझ में आया? यह ऊन का क्या कहलाता है? रजोणा और वोच्छा वह कहीं नहीं था। ऐ... हेमाणी! गुलाबचन्दभाई! अब तो सब पुराने हो गये, इसलिए बहुत नहीं भड़कते। आहाहा!

पाँच संघ हुए हैं; उन्होंने सूत्र सिद्धान्त अपभ्रंश किये हैं। भगवान के कहे हुए अनादि–सनातन शास्त्रों को अपभ्रंश किया है। सूत्र और उसके नियम **जिन्होंने बाह्य वेष को बदलकर आचरण को बिगाड़ा है,...** मूल तो अन्दर बिगाड़ा है और वेष बिगाड़ा है। **जिन्होंने बाह्य वेष को बदलकर आचरण को बिगाड़ा है,...** पूरा वेष पलटकर सब आचरण बिगाड़ा। आहाहा! बहुत ये सब है न एक? अमरचन्द स्थानकवासी में है। अब सबको इकट्ठा होना है। परन्तु इकट्ठे किस प्रकार हों इसमें? एक आगरा में है, अमरचन्द स्थानकवासी। बहुत पढ़ा हुआ, बहुत पढ़कर खिचड़ी करता है। सबका समन्वय करता है परन्तु इसमें समन्वय किसके साथ करना? भाई! मार्ग ऐसा है, बापू! केवली तीर्थंकरों ने, परमेश्वरों ने यह आदर किया था, वह मार्ग इस प्रकार से भगवान ने कहा। समझ में आया?

वे जिनमत के मूलसंघ से भ्रष्ट हैं,... वे सब जिनमत का मूलसंघ जो अनादि

का था, उससे पृथक् पड़कर भ्रष्ट हुए हैं। वह जैनमार्ग नहीं है। समझ में आया? गजब कठिन काम, भाई! ऐसा खुल्ला! यह तो आचार्यों ने खुल्ला करके रखा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने वस्तु की स्थिति जगत के समक्ष प्रसिद्ध की है। ऐ... दामोदरभाई! यह पहले पक्का है। यह ऐसा मार्ग है। अनादि काल का यह मार्ग है, कहीं नया नहीं है। नये तो ये सब निकले हुए हैं। भ्रष्ट होकर निकले हुए मार्ग हैं। आहाहा!

जिनमत के मूलसंघ से भ्रष्ट हैं, उनको मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं है। उन्हें सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! भ्रष्ट हुए। उसमें जन्मे हों और साधु हो, तो कहते हैं उन्हें सम्यग्दर्शन ज्ञान नहीं होता और मोक्षमार्ग होता ही नहीं। छबीलभाई! तुम भी इसमें बराबर आये। सवेरे समयसार में समय मिलता नहीं। नरसिंहभाई थे। अपने नरसिंहभाई कोठारी, नहीं? क्या हो? भाई! सत्य बात तो जो है, वह है। किसी व्यक्ति के प्रति अनादर के लिये है, ऐसा भी नहीं है। ऐसा उसके प्रति द्वेष है – ऐसा भी नहीं है। वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। वहाँ क्या हो? दूसरे प्रकार से उसका किस प्रकार मार्ग निकालना? देवीचन्दजी! यहाँ तो वैष्णव और जैन को... पृथक् किया। मूल में अन्तर है। अर..र..र! गजब बात! ऐसा कौन जाने काल ही ऐसा है। कोई देव भी आता नहीं क्योंकि सबके भाव ऐसे पाप के पोषण के बढ़ते हैं न! देव भी कहाँ से आवे? आहाहा!

ऐसा भगवान का मार्ग, कहते हैं उसकी श्रद्धा-सम्यग्दर्शन तो प्रगट कर। मार्ग तो ऐसा है। व्यवहार में दिगम्बर मुद्रा, पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण... आदि। और निश्चय में भी रत्नत्रय का परिणमन। ऐसे मार्ग की, विकल्प से भिन्न करके स्वभाव का अनुभव, श्रद्धा कर तो उसे सम्यग्दर्शन होगा; नहीं तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा। समझ में आया?

मोक्षमार्ग की प्राप्ति मूलसंघ के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही से है... मोक्षमार्ग। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति तो मूलसंघ में अनादि का मार्ग है, उसका श्रद्धान। मूलसंघ का श्रद्धान, मूलसंघ का ज्ञान और उसके आचरण से है। **ऐसा नियम जानना।** यह नियम है। यह कायदा है। रामजीभाई कहा था न? नियम में। नियम आया था न समयसार, ऐसा कायदा अनादि का है। ऐसा नियम किसी ने किया है, ऐसा है नहीं। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

गाथा-१२

आगे कहते हैं कि जो यथार्थ दर्शन से भ्रष्ट हैं और दर्शन के धारकों से अपनी विनय कराना चाहते हैं, वे दुर्गति प्राप्त करते हैं –

जे[1] दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।१२।।

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान्।
ते भवंति लल्लमूकाः बोधिः पुनः दुर्लभा तेषाम्।।१२।।

दृग-भ्रष्ट जो दर्शन-सहित से पैर पुजवाते उन्हें।
बोधि कठिन है हों सदा वे मूक लूले भविष्य में।।१२।।

अर्थ – जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं तथा अन्य जो दर्शन के धारक हैं, उन्हें अपने पैरों पड़ाते हैं, नमस्कारादि कराते हैं, वे परभव में लूले, मूक होते हैं और उनके बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

भावार्थ – जो दर्शन भ्रष्ट हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं और दर्शन के धारक हैं वे सम्यग्दृष्टि हैं; जो मिथ्या-दृष्टि होकर सम्यग्दृष्टियों से नमस्कार चाहते हैं वे तीव्र मिथ्यात्व के उदय सहित हैं, वे परभव में लूले, मूक होते हैं अर्थात् एकेन्द्रिय होते हैं, उनके पैर नहीं होते, वे परमार्थतः लूले-मूक हैं, इस-प्रकार एकेन्द्रिय-स्थावर होकर निगोद में वास करते हैं, वहाँ अनन्तकाल रहते हैं; उनके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है; मिथ्यात्व का फल निगोद ही कहा है। इस पंचम काल में मिथ्यामत के आचार्य बनकर लोगों से विनयादिक पूजा चाहते हैं, उनके लिए मालूम होता है कि त्रसराशि का काल पूरा हुआ, अब एकेन्द्रिय होकर निगोद में वास करेंगे – इसप्रकार जाना जाता है।

---

१. मुद्रित संस्कृत सटीक प्रति में इस गाथा का पूर्वार्द्ध इसप्रकार है जिसका यह अर्थ है कि ''जो दर्शन-भ्रष्ट पुरुष दर्शनधारियों के चरणों में नहीं गिरते हैं'' ह्न

''जे दंसणेषु भट्ठा पाए न पडंति दंसणधराणं''ह्न

उत्तरार्ध समान है।

गाथा-१२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि... अब कहते हैं कि **जो यथार्थ दर्शन से भ्रष्ट हैं और दर्शन के धारकों से अपनी विनय कराना चाहते हैं, वे दुर्गति प्राप्त करते हैं –**

जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।१२।।

नीचे टीका की गाथा में एक आधा पद (में) अन्तर है।

''जो दर्शन-भ्रष्ट पुरुष दर्शनधारियों के चरणों में नहीं गिरते हैं''–अस्ति से लिया है। दर्शनभ्रष्ट पुरुष जो हैं, वे **'दर्शनधारियों के चरणों में नहीं गिरते हैं'** वे अज्ञानी हैं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि पुरुष धर्मात्मा हैं, उन्हें सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट पुरुष चरणवन्दन नहीं करते, वे एकेन्द्रिय निगोद में जानेवाले हैं, कहते हैं। ऐ... सुजानमलजी! यह सादड़ी में कहे तो वहाँ शोर मचाये।

अर्थ – **जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं तथा अन्य जो दर्शन के धारक हैं, उन्हें अपने पैरों पड़ाते हैं, नमस्कारादि कराते हैं, वे परभव में लूले, मूक होते हैं...** लूले अर्थात् पैर नहीं और मूक अर्थात् जीभ नहीं। अर्थात् एकेन्द्रिय होते हैं, ऐसा। मूल तो निगोद का अर्थ है। इसका फल निगोद ही है। समझ में आया? लूला और मूक। आहाहा!

एक व्यक्ति कहता था, आहाहा! जिनवाणी से ज्ञान नहीं होता? जिनवाणी, वह परवस्तु? आहाहा! उसे जीभ नहीं मिलेगी। बात तो सत्य है। वास्तविक वीतरागता प्राप्त हो, उसे जीभ क्या, शरीर नहीं मिलेगा, फिर जीभ कहाँ से मिलेगी? जिनवाणी परवस्तु है। स्व का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हों, तब ऐसे निमित्त होते हैं। जिनवाणी, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प आदि होते हैं। समझ में आया?

दर्शन के धारक हैं, उन्हें अपने पैरों पड़ाते हैं,... ऐसे भाव करते हैं, हों! वह कहीं पड़ाता नहीं। **वे परभव में लूले, मूक होते हैं और उनके बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है।** जिन्हें सम्यग्दर्शन हुआ है, उन जीवों से (जो) सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं, उनसे बहुमान कराना चाहते हैं। बहुमान क्यों नहीं

करते ? हम तुझसे दीक्षा में बड़े हैं। पचास वर्ष की दीक्षा है, हमारी साठ वर्ष की दीक्षा है। कहते हैं कि ऐसे अज्ञानी जीव लूले, मूक होंगे। पैर नहीं मिलेंगे और जीभ नहीं मिलेगी। **उनके बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है।** ऐसे पंचम काल में ऐसे उत्तम तत्त्व का श्रवण, ऐसा योग मिला, तथापि कहते हैं कि ऐसा जो करेगा... समझ में आया ? उसे बोधि प्राप्त होना दुर्लभ होगी।

***भावार्थ* – जो दर्शन भ्रष्ट हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं...** मूलसंघ की मान्यता से विरुद्ध हो गये, वे मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? चाहे तो श्वेताम्बर के संघ को माने, श्वेताम्बर के सूत्र को माने, श्वेताम्बर के साधु आर्यिका को माने, स्थानकवासी सूत्र को माने, वे सब मूलसंघ से भ्रष्ट हुए मिथ्यादृष्टि हैं। ऐ.. छबीलभाई ! घर में महिलाओं को यह सब जँचना कठिन पड़े। कभी सुना न हो बेचारियों ने, बाड़ा में जन्मे हों। आहाहा ! दो हजार वर्ष पहले पन्थ निकला, उसकी खबर भी नहीं होगी। उनमें से यह स्थानकवासी पाँच सौ वर्ष पहले निकले। उनमें से यह तेरापन्थी निकले। सब मूलसंघ से भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया ? जाधवजीभाई ! तुम्हारे पुस्तक नहीं ? पुस्तक नहीं ? अष्टपाहुड है या नहीं ? एक भी नहीं ? अष्टपाहुड पुस्तक ही नहीं घर में ? ....महिलाओं के पास नहीं ? नहीं होगी। मिलती नहीं। अब मिलती नहीं, समाप्त हो गयी है। अब सेठी कुछ छपाने का भाव करते हैं।

जो कोई दर्शनभ्रष्ट है अर्थात् मूलसंघ के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और मूलसंघ के अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प और मूलसंघ की दिगम्बर नग्नदशा, उसे न मानकर दूसरे माननेवाले हुए, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। पहले ऐसा निकला हो, तब तो ये भगें परन्तु अब तो बहुत वर्ष हुए। अब नहीं भगते। मार्ग तो यह है, भाई ! आहाहा !

और दर्शन के धारक हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं;... ऐसे दर्शन को जो अन्तर से मानता है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—ऐसी वीतरागी पर्याय, वह मोक्षमार्ग है; अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह व्यवहार है; नग्न-दिगम्बर, वह निमित्तरूप से अजीव की दशा है। उस अजीव को, आस्रव को, संवर-निर्जरा को और जीव को (मानता है)। इस प्रकार जीव का स्वरूप है। समझ में आया ? जीवद्रव्य को जीवद्रव्यरूप से। मोक्षमार्ग की पर्याय संवर, निर्जरारूप से और विकल्प उसे उस प्रकार का होता है, ऐसा जो अट्ठाईस मूलगुण का

(विकल्प) उसे आस्रवरूप से (मानता है)। अजीव का संयोग नग्नदशा होती है, दूसरी (दशा) उसे नहीं हो सकती। अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा और आत्मा, यह सब आ गया इसके अन्दर। आहाहा! उसमें एक में (भी) कुछ अन्तर करे तो नवतत्त्व की विरुद्ध श्रद्धा है। बराबर है?

दर्शन के धारक हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं;... स्वरूप, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प और नग्नदशा। उससे भिन्न करके स्वरूप की दृष्टि (होना), वह सम्यग्दर्शन है परन्तु श्रद्धा में पहले यह सब लिया हुआ है कि ऐसा मोक्ष का मार्ग तीन रत्नवाला और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प तथा नग्नमुद्रा (होती है), ऐसी श्रद्धा करके स्वभाव का भेदज्ञान किया, ऐसे जीव दर्शन के धारक हैं, सम्यग्दृष्टि हैं।

जो मिथ्यादृष्टि होकर सम्यग्दृष्टियों से नमस्कार चाहते हैं... हमें क्यों नमन नहीं करते? क्यों हमारा आदर नहीं करते? कहो, समझ में आया? क्यों हमें आहार-पानी नहीं देते? अभी विवाद उठता है न? यहाँ तो कितने ही कहते हैं, क्यों हमारा आदर नहीं करते? तुझे किसका आदर करे? सुन न!

मुमुक्षु : आदर कराने को...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह फिर अलग बात है परन्तु ऐसा कि महिमा है, शास्त्र में बड़े हों, जो जानपने में हों, चारित्र की पचास वर्ष पहले की ली हुई हो और आजकल के हों, वे उन्हें नमन करे नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मिथ्या-मिथ्या, ढकोसला है। ऐसा है, भाई! क्या हो? ऐ.. शान्तिभाई! देखो! ऐसा इसमें निकला।

मुमुक्षु : बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है?

मुमुक्षु : यह तो थोड़ा दृढ़ हो गया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहते हैं। ...और यात्रा-वात्रा हो गयी... फिर पुण्य हो। बापू! मार्ग तो पहले से यह है, ठेठ से। समझ में आया? अकेला पुण्य इतने से नहीं, पुण्य

से पृथक् पड़कर अपनी श्रद्धा, अनुभव करे, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उस सम्यग्दर्शन में ऐसा मार्ग वीतराग का होता है, यह उसकी प्रतीति में आ जाता है। अनादि सनातन मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? जयन्तीभाई! अभी इसे मन्दिर बनाना है न? गढडावाले पीछे रह गये। आहाहा! अकेला क्या करे? वापस पैसा चाहिए न! कहो समझ में आया?

जो मिथ्यादृष्टि होकर सम्यग्दृष्टियों से नमस्कार चाहते हैं, वे तीव्र मिथ्यात्व के उदय सहित हैं, वे परभव में लूले, मूक होते हैं अर्थात् एकेन्द्रिय होते हैं, उनके पैर नहीं होते, वे परमार्थतः लूले-मूक हैं,... देखो! स्पष्टीकरण ही किया है। आहाहा! वीतरागपरमेश्वर का अनादि मार्ग है, उससे भ्रष्ट हुए, सम्यग्दृष्टि से बहुमान करावे, कराने का भाव रखें... समझ में आया? वे एकेन्द्रिय होनेवाले हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रिय-स्थावर होकर निगोद में वास करते हैं,... वे एकेन्द्रिय-निगोद होनेवाले हैं। एकेन्द्रिय स्थावर होकर निगोद में टिके रहेंगे। अवतार... आहाहा! तत्त्व के अनाराधक अथवा विराधक, वे निगोद और तत्त्व के आराधक, वे सिद्ध। यह मूल स्थिति है। बीच की स्थिति तो फिर गति है। समझ में आया? **वहाँ अनन्तकाल रहते हैं;...** आहाहा! एकेन्द्रिय और निगोद दो होकर अनन्त काल। निगोद का अर्धपुद्गल है। सूक्ष्म और बादर निगोद है न? सूक्ष्म निगोद और बादर निगोद, दो में होकर अर्धपुद्गल (परावर्तन)। समझ में आया? और पृथ्वी, जल, अग्नि आदि एकेन्द्रिय और सूक्ष्म और बादर निगोद, ये सब होकर असंख्य पुद्गलपरावर्तन होते हैं। आहाहा! इसका तो समुच्चय रखा होगा न? अर्धपुद्गल भी अनन्त काल कहलाता है।

उनके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ होती है;... ऐसे जीवों को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का योग अनन्त काल में दुर्लभ होगा। मनुष्यपना न प्राप्त करे, तब उन्हें श्रवण मिलना तो कब मिले? महादुर्लभ है। पूरा फेरफार हो गया। खबर नहीं, खबर नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह तो अनादि का तीर्थंकर का भरत में, ऐरावत में और महाविदेह में ऐसा ही मार्ग है, दूसरा हो सकता ही नहीं।

मुमुक्षु : दिगम्बर नाम धारक...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सत्य बात है। परन्तु अब क्या हो? ऐसी बात करे, वहाँ

(ऐसा कहे), ऐसी बाहर की क्रिया चाहिए, बाहर की क्रिया अमुक, अमुक क्रिया (चाहिए) अब सुन न! बाहर की क्रिया। आहाहा! बाहर का त्याग, तप और क्रिया के कारण कर्ताबुद्धि में रच-पच गये और माने कि हम कुछ अधिक हो गये। दिगम्बर में ऐसा हो गया है। आहाहा!

मिथ्यात्व का फल निगोद ही कहा है। प्रसिद्ध होओ कि मिथ्यात्व ही संसार है, ऐसा नहीं आता अपने? भाई! समयसार नाटक में भावार्थ में। मिथ्यात्व ही संसार है। विपरीत मान्यता—वीतरागमार्ग की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, विकल्प और वेष—ऐसे मार्ग से विपरीतता, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव वह संसार है। स्त्री, पुत्र छोड़े और नग्न हुए और वस्त्र छोड़कर साधु हुए, तो कहते हैं सब मिथ्यात्व हुआ। ऐसी सब बातें। आहाहा! मिथ्यात्व की पुष्टि करनेवाले निकले। शासन के शत्रु। पढ़ें हैं बी.ए.... बी.ए.। पढ़े हों या इकॉनोमी का पढ़े हों। भटकना है। इस मार्ग की अन्तर श्रद्धा जिसे नहीं, सब लिंग में साधु-साध्वीपना मानते हैं, पंच महाव्रत के विकल्प का भी ठिकाना नहीं, उनके कहे हुए शास्त्र में कहा, वैसा भी है नहीं। यहाँ तो भगवान ने कहा हुआ, वैसी सम्यग्दर्शन, ज्ञान की परिणति और उसके पंच महाव्रत आदि के विकल्प, व्यवहारबन्ध के कारणरूप और मुद्रा, इसके अतिरिक्त सब मार्ग जैन से भ्रष्ट है। सेठी! तुम तो दिगम्बर में जन्मे थे। बाह्य। यह शीघ्र नहीं बोलते। इन्होंने भी जवाब दिया, जन्मे तो क्या हुआ?

मिथ्यात्व का फल निगोद ही कहा है। समझ में आया? उसमें है, हों! समयसार नाटक में। मोक्ष अधिकार - नौवें अधिकार का सार लिखा है न? **प्रसिद्ध है कि मिथ्यात्व ही आस्त्रव-बन्ध है... प्रगट है कि मिथ्यात्व ही आस्त्रव-बन्ध है... मिथ्यात्व का अभाव अर्थात् सम्यक्त्व से संवर निर्जरा तथा मोक्ष है...** समझ में आया? मोक्ष अधिकार पूरा किया न, फिर से...

इस पंचम काल में मिथ्यामत के आचार्य बनकर... ऐसे पंचम काल में ऐसी मिथ्याश्रद्धा के प्रमुख बनकर **लोगों से विनयादिक पूजा चाहते हैं,...** लोक में आचार्य, उपाध्याय और साधु (रूप का) विनय आदि उनसे चाहते हैं। **उनके लिए मालूम होता है कि त्रसराशि का काल पूरा हुआ,...** आहाहा! ऐ... मगनभाई! यहाँ कोई गड़बड़ नहीं चलती, यहाँ कहते हैं। त्रस की स्थिति दो हजार सागर की है। ऐसे मिथ्यामत और

फिर उसके आचार्य हुए, ऐसा कहते हैं प्रमुख। साधु, आचार्य, उपाध्याय, उनके बड़े सेठ (हुए) क्या कहलाता है? संघ के नायक। गृहस्थ भी, हों! संघ के मुख्य सेठ होते हैं न?

इस पंचम काल में मिथ्यामत के आचार्य बनकर लोगों से विनयादिक... बहुमान, संघपति इत्यादि चाहते हैं। **पूजा चाहते हैं, उनके लिए मालूम होता है कि त्रसराशि का काल पूरा हुआ,...** आहाहा! त्रस की स्थिति दो हजार (सागर) की पूरी हो गयी लगती है। मरकर एकेन्द्रिय निगोद में जाएँगे। आहाहा! सिर तोड़ डाले...। ....भाई! यहाँ लोक में बड़े त्यागी, साधु, उपाध्याय और पण्डित को क्या कहा जाता है? विद्यावाचस्पति, गणाधिपति ऐसे नाम धराकर पूजा चाहते हैं, (उनकी) त्रस की स्थिति पूरी हुई। **अब एकेन्द्रिय होकर निगोद में वास करेंगे...** त्रस की स्थिति पूरी हुई लगती है। वे एकेन्द्रिय में जाकर वहाँ निश्चिन्तता से वास करेंगे। **इसप्रकार जाना जाता है।** ऐसा जानने में आता है। आहाहा! मिथ्या श्रद्धा के नायक, प्रमुख, सेठ-सेठानी। सेठानी वह है न? सामने... प्रौषध, सामायिक, उसमें ऐसा होता है, उसका ऐसा होता है। मिथ्यामत की प्रमुख महिलाएँ होती हैं। कहते हैं, उनकी त्रसस्थिति पूरी होने को आयी है।

एक बार कहा था न? मोहनलालजी थे न? मोहनलालजी। वढवाण के। नहीं? मोहनलालजी मणिलालजी। एक वे थे न? तब नहीं थे... वढवाण के मलूकचन्द। पैर न पड़े तो कौन है? ऐसा कहते थे। चरमशरीरी लगता है, ऐसा बोले। अर्थात् तुम्हारा अन्तिम शरीर लगता है, ऐसा कहे। हमारे पैरों नहीं पड़ते? आहाहा! तुझे... वह तो ले। ऐसा एक बार बोले थे। यह सुन्दर वोरा के उपाश्रय में। सुन्दर वोरा का उपाश्रय है न? वहाँ मोहनलालजी थे। मैं आकर पैरा में नहीं पड़ा। वे सब गुलाबचन्दजी के भगत थे। मलूकचन्द और वे नहीं? मलूकचन्द का साला। नहीं? बूटमाता का ओझा, दो-दो हजार लोग आते थे। (संवत्) १९८२ हमारा चातुर्मास था। सब आते। बहुत अपने जैन भी आते थे, हों! स्थानकवासी। महाराज, यह कैसे? कहा, यह गप्प है। गप्प-गप्प है, सत्य जरा भी होवे तो भी यह मान्यता यह तो व्यन्तरी, कोई भूतड़ी... यह मेरा न माने। बूटदेवी... बूटदेवी का था न? १९८२ में बहुत माने। लाठी पहले गाँव आता है। लालपर... लालपर न? करोड़पति आते हैं। तब आते थे। दर्शन करने आते। किसके लिये आये हैं? बूटमाता। अरे! परन्तु यह? सामायिक करनेवाले जैन को यह बूटमाता कैसी? आहाहा! भ्रमणा।

यहाँ तो तीर्थंकर उस बूटमाता को मानते नहीं परन्तु तीर्थंकर ने कहे हुए ऐसे मार्ग से भ्रष्ट हुए को, यह सब त्रस की स्थिति पूरी हुई प्रमुख की बात है, हों! साधारण मनुष्य निगोद आदि में जाता है। समझ में आया? अब इसमें समन्वय कब करना? आहाहा! मलमल का एक दो हाथ का एक लम्बा, चौड़ा टुकड़ा और एक सांधी हुई थैली, दोनों को सांधे और फिर ओढ़े तो मूर्ख कहते हैं। दो किसलिए? रखते हैं।....गर्मी में पतला ओढ़े और मोटा नीचे रखे, सर्दी में मोटा ऊपर ओढ़कर पतला नीचे रखे। दो रखना मिटे। ...पतला और मोटा। नीचे रखे। दो पाट रखे। यह तो अकेला मलमल का, अकेला सरबत का टुकड़ा पाँच हाथ का लम्बा और उसके साथ नीचे वारदान। वारदान का टुकड़ा सांधा हुआ। कोथला समझते हो? वारदान। सूतली... सूतली का। मूरख कहेंगे। इसी प्रकार वीतरागमार्ग ऐसा होता है, उसके साथ विपरीत मार्ग है, उनका दोनों का मेल करे तो उससे भी महा विपरीत है। आहाहा!

गाथा-१३

आगे कहते हैं कि जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, उनके लज्जादिक से भी पैरों पड़ते हैं, वे भी उन्हीं जैसे ही हैं –

जे वि पडंति य तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं।।१३।।

येऽपि पतन्ति च तेषां जानंत: लज्जागारवभयेन।
तेषामपि नास्ति बोधि: पापं अनुमन्यमानानाम्।।१३।।

जो जानते भी उन्हें गारव भय शरम से पूजते।
बोधि नहीं है उन्हें भी वे पाप ही अनुमोदते।।१३।।

अर्थ – **जो पुरुष दर्शन सहित हैं वे भी जो दर्शन भ्रष्ट हैं उन्हें मिथ्यादृष्टि जानते हुए भी उनके पैरों पड़ते हैं, उनकी लज्जा, भय, गारव से विनयादि करते हैं, उनके भी बोधि अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं है, क्योंकि वे भी मिथ्यात्व जो कि पाप है उसका अनुमोदन करते हैं। करना, कराना, अनुमोदन करना समान कहे हैं।**

यहाँ लज्जा तो इसप्रकार है कि हम किसी की विनय नहीं करेंगे तो लोग कहेंगे यह उद्धत है, मानी है, इसलिए हमें तो सर्व का साधन करना है। इसप्रकार लज्जा से दर्शनभ्रष्ट के भी विनयादिक करते हैं तथा भय इसप्रकार है कि यह राज्यमान्य है और मंत्र, विद्यादिक की सामर्थ्ययुक्त है, इसकी विनय नहीं करेंगे तो कुछ हमारे ऊपर उपद्रव करेगा; इसप्रकार भय से विनय करते हैं तथा गारव तीन प्रकार कहा है; रसगारव, ऋद्धिगारव, सातगारव। वहाँ रसगारव तो ऐसा है कि मिष्ट, इष्ट, पुष्ट भोजनादि मिलता रहे, तब उससे प्रमादी रहता है तथा ऋद्धिगारव ऐसा है कि कुछ तप के प्रभाव आदि से ऋद्धि की प्राप्ति हो उसका गौरव आ जाता है, उससे उद्धत, प्रमादी रहता है तथा सातगारव ऐसा है कि शरीर निरोग हो, कुछ क्लेश का कारण न आये तब सुखीपना आ जाता है, उससे मग्न रहते हैं ह्व इत्यादिक गारवभाव की मस्ती से भले-बुरे का कुछ विचार नहीं करता, तब दर्शनभ्रष्ट की भी विनय करने लग जाता है। इत्यादि निमित्त से दर्शन-भ्रष्ट की विनय करे तो उसमें मिथ्यात्व का अनुमोदन आता है; उसे भला जाने तो आप भी उसी समान हुआ, तब उसके बोधि कैसे कही जाये ? ऐसा जानना।।१३।।

गाथा-१३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, उनके लज्जादिक से भी पैरों पड़ते हैं, वे भी उन्हीं जैसे ही हैं... जो कोई जैनसंघ से यह सब भ्रष्ट हुए हैं—स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, श्वेताम्बर लोग—उन्हें कोई लज्जा से पैर पड़ते हैं। क्या करें? पूरा परिवार मानता है। कितने गाँव के नगरसेठ उन्हें मानते हैं। हम उनके कुटुम्ब के हैं। वे मानते हैं तो हमें लज्जा से भी मानना पड़ता है। लज्जादिक से पैरों पड़ते हैं। भय आयेगा, हों! **वे भी उन्हीं जैसे ही हैं...** करे, करावे और अनुमोदन करे, तीनों समान हैं। इसमें आयेगा। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है न? इसमें आयेगा। समझ में आया? नीचे है, देखो! **उसमें मिथ्यात्व का अनुमोदन आता है; उसे भला जाने तो आप भी उसी समान हुआ,...** आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग, उससे विरुद्ध श्रद्धावाले की विनय करना, कहते हैं कि लज्जा से, ऐसे अनुकूल होंगे तो अपने को खाने-पीने का मिलेगा, चलो, मानो। लड्डुओं को! जिसके तल में लड्डु, उसके तल में हम। ऐसा कुछ बोलते

हैं न? ....बोलते हैं। जिसके तल में लड्डु ऐसा। ऐई! कुछ खबर नहीं थी। जिसमें अनुकूलता और लड्डु मिले, उसमें मिल जाएँ। श्रद्धा-ज्ञान का कुछ भान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

जे वि पडंति य तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं।।१३।।

'जाणंता', हों! खबर है कि यह वास्तविक मूलमार्ग से भ्रष्ट है, ऐसा तो जानते हैं। नहीं खबर? यह सब सुनना कठिन पड़े, हों! तुम्हारे मोहनभाई और प्रमुख... कहाँ गये? मोहनभाई गये? उनके बड़े भाई हैं। ऐसे लौकिकरूप से वे परन्तु इस वस्तु की खबर नहीं होती, मार्ग की खबर नहीं होती, इसलिए क्या हो? लौकिक खानदानी इसमें क्या काम आवे? लोकोत्तर वस्तु है, वह वस्तु होनी चाहिए। आहाहा!

अर्थ – **जो पुरुष दर्शन सहित हैं, वे भी जो दर्शन भ्रष्ट हैं, उन्हें मिथ्यादृष्टि जानते हुए भी...** ख्याल में है कि यह मूल श्रद्धा से भ्रष्ट है, चारित्र से भ्रष्ट है, ज्ञान से भ्रष्ट है—ऐसा जानने पर भी **उनके पैरों पड़ते हैं, उनकी लज्जा, भय, गारव से विनयादि करते हैं, उनके भी बोधि अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं है,...** समझ में आया? **उनके भी बोधि अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं है, क्योंकि वे भी मिथ्यात्व जो कि पाप है, उसका अनुमोदन करते हैं।** अन्दर पाठ है न? '**पावं अणुमोयमाणाणं**' ऐसे मिथ्यादृष्टि को अनुमोदन करते हैं, देखो! यह अनुमोदन की व्याख्या आयी। ऐसा ठीक है, भले न बोले परन्तु आदर करते हैं, वही अनुमोदन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जय-जय किसकी करते हैं? ....किसकी करते हैं? यह कहीं बारोठ है।

मुमुक्षु : पुराना परिचित।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराना होवे तो क्या जहर खाना? पुराना होवे तो। पुराना परिचित होवे तो अपने दोनों इकट्ठे होकर जहर पियो, ऐसा होगा? ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा!

यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव तीर्थंकर का ऐसा मार्ग है। ऐसे मार्ग से जिसे कुछ भी फेरफार करके निकले, ऐसों को वन्दन, विनय साधु मानकर, धर्मी मानकर आहार–पानी देना, वह सब पाप को अनुमोदन करते हैं। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : अनुकम्पा...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुकम्पा बुद्धि से देते हो या महिमा मानकर देते हो ?

मुमुक्षु : पुराने हैं, ऐसा जानकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग। आवे उसे दे, वह तो एक साधारण (बात हुई) परन्तु उसे धर्मरूप से माना कि पधारो, पधारो महाराज, हमें बहुत लाभ हुआ। ऐसी चेष्टा हो, वह अनुमोदन है। आवे साधारण, (वह) दूसरी बात है। समझ में आया ? आहाहा!

उसका अनुमोदन करते हैं। करना, कराना, अनुमोदन करना समान कहे हैं। चाहे तो जैनदर्शन से भ्रष्ट हुए को पापी मिथ्यादृष्टि है, उसे करते हैं, उसे कोई करावे। होओ साधु तुम। और विनयादि से अनुमोदन करे, तीनों को समान पाप है। समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, बापू! अब इसकी व्याख्या करेंगे। लज्जा किसे कहना ? और यह....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)